Volume-1, No.2 Aug.-2014, pp.107-108

वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था में परिवर्तन – अनिवार्य एवं आवश्यक

आशुतोष कुमार शुक्ल, असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
आई.आई.एम.टी. कॉलिज ऑफ एजूकेशन, गंगा नगर, मेरठ, उत्तर–प्रदेश भारत।

भारत में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। छात्रों में अनुशासनहीनता, अध्यापकों में अपने उत्तरदायित्वों के प्रति गैर गम्भीरता आगे चलकर बेरोजगारी और ऐसी ही अनेक समस्याएँ भारतीय शिक्षा जगत में व्याप्त होगीं, इनके कारणों की गहराई में जाया जाये तो प्रतीत होगा कि इन समस्याओं के मूल में प्रारम्भिक शिक्षा की उपेक्षा, नींव की कमजोरी, अयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति, ध्येयहीनता, विद्यार्थी के सामने स्पष्ट नहीं रहता कि उन्हें पढ़कर क्या करना है? जो शिक्षा वे प्राप्त कर रहे हैं उनका उनके जीवन में क्या योगदान होगा? जीवन जीने में प्राप्त की जा रही शिक्षा की क्या भूमिका होगी?

प्राचीन शिक्षा–व्यवस्था में गुरू के सानिध्य में रहकर शिष्य–साधना का तेजस्वी जीवन बिताते थे तपोनिष्ठ होने से उनका शरीर, कुन्दन जैसा दैदीप्यमान होता था। सासांरिक जीवन में आने वाली कठिनाईयों से संघर्ष करने की उनमें क्षमता होती थी। साधना और स्वाध्याय के सम्मिश्रण से उनको आत्मज्ञान की अनुभूति हो जाती थी। विद्यार्थी केवल गुणवान या ज्ञानवान होकर ही नहीं निकलते थे वरन् वे शक्ति पुत्र बनकर भी गुरू फल से सांसारिक जीवन में प्रवेश करते थे। गुरू के समीप रहकर जहाँ शिष्य इस तरह की ओजस्विता तथा तेजस्विता धारण करते थे, वहाँ गुरू विहीन पुरूषों की भर्त्सना भी होती थी। 'निगुरा' शब्द एक प्रकार की गाली समझी जाती थी। माता–पिता यह व्यवस्था बना लेते थे कि बालक को किसी आचारवान, गुणवान और विद्वान गुरू के समीप उसके सरंक्षण में भेजते थे ताकि बालक गुरूविहीन होने के अपराध से बच सके।

प्राचीन काल में गुरूकुलों की शिक्षा–पद्धति का स्वरूप यह था कि पुस्तकीय पाठ्यक्रम उतना ही होता था जितने के सहारे जीवन मार्ग पर आने वाली समस्याओं का समाधान हो सके। शिक्षा का यहाँ सागर तो अथाह है, यदि उस समूचे को कोई संग्रह करना चाहे तो उसके लिए दसियों जन्मों का समय भी कम पड़ेगा। यदि सार्थक शिक्षा लेनी है तो उन प्रसंगों को छोड़ना पड़ेगा जो स्कूल छोड़ने के बाद प्रवाहपरक जीवन में कभी काम ही नहीं आते। इस बहुसंशय में काम की बातें छूट जाती है और निरर्थक कूड़ा सिर पर लद जाता है। निरर्थक इसलिए कि उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

प्राचीन कालीन सतयुग और कुछ नही ंगुरुकुल प्रणाली की शिक्षा–पद्धति का चमत्कार था। सर्वजनीन बहुमुखी पुनरुत्थान के लिए हमें उसी विद्या, उसी परिपाटी से प्रेरणा लेनी होगी। समय के साथ परिस्थितियाँ भी बदल गई हैं। इसलिए ठीक प्राचीनकाल जैसी विधि–व्यवस्था तो नहीं अपनाई जा सकती, पूरी तरह से उसी की प्रतिमूर्ति खड़ी करना सम्भव नहीं है, परन्तु इतना तो हो ही सकता है कि उस पद्धति का स्वरूप एवं अनुशासन गम्भीरतापूर्वक समझा जाए और उतने भर को वर्तमान शिक्षाक्रम में समाविष्ट कर लिया जाए। परिस्थितियाँ बदल जाने से उसी पद्धति को तो ज्यों का त्यों नहीं लाया जा सकता पर वह सिद्धान्त तो शाश्वत है। शिक्षा के साथ प्रतिभा निखार और सुसंस्कारिता संवर्धन का क्रम तो जोड़ा जा सकता है।

ब्रिटिश काल में शिक्षा–पद्धति का जो स्वरूप बनाया गया, उससे युवकों में अपनी संस्कृति के प्रति उपेक्षा और अंग्रेजी संस्कृति सभ्यता के प्रति झुकाव भी पैदा हुआ। बाहर से थोपी गई दासता की अपेक्षा यह मानसिक गुलामी अधिक भयंकर हे। अंग्रेज चले गये किन्तु अंग्रेजियत नही ंगई–इसका कारण यह नहीं है कि प्रयत्नपूर्वक प्रचलित की गई शिक्षा–पद्धति ने लोगों के मन में अंग्रेजी दासता को वरदान के रूप में प्रतिष्ठित किया था। थोड़े बहुत संशोधन के साथ आज भी उसी ढंग की शिक्षा प्रचलित है, जिससे विचारशीलता कम तथ्यों के प्रति आग्रह ही अधिक उत्पन्न होता है।

पं0 श्री राम शर्मा आचार्य जी कहते हैं कि हमारे देश की शिक्षा–पद्धति ज्ञान और जीवन की खाई को पाट नहीं सकी। फिर भी लोग ऊँची शिक्षा के लिए लालायित हैं और 99 प्रतिशत छात्रों को पढ़ने के पीछे अच्छा रोजगार पाना ही उद्देश्य है। ऊँची शिक्षा से वह प्राप्त नहीं हो सकता तो इसका मतलब है कि शिक्षा बहुत ऊँचे दर्जे की सुनियोजित धोखाधड़ी है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति पर पं0 श्री राम शर्मा आचार्य जी अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि यह शिक्षा पद्धति युग ही आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रही है। शिक्षा और साक्षरता में वृद्धि अवश्य हुई है परन्तु इसके साथ ही बौद्धिक चतुरता, संकीर्णता एवं स्वार्थपरता में भी बढ़ोत्तरी हुई है। शिक्षा से चरित्र का निर्माण होता है पर उसी शिक्षा पाने वाले शिक्षित वर्गों ने तो सबसे पहले अपना चरित्र ही खो दिया है और इसका प्रमुख कारण है शिक्षा का व्यवसायिक होना क्योंकि व्यवसाय लाभ–हानि का खेल है, संवेदना भावना का नहीं। जब शिक्षा व्यवसाय बन जाए, व्यवसायियों के हाथ लग जाए

तो अपेक्षित आशा सम्भव नहीं हो सकती। आज शिक्षा के साथ विद्या का समावेश अनिवार्य है। वर्तमान शिक्षा पद्धति आंकड़ों एवं जानकारियों में ही सिमट कर रह गयी है, क्योंकि अच्छे रोजगार के लिए प्रयुक्त परीक्षा को इन्हीं कसौटियों में से गुजरना पड़ता है। इसी कारण बच्चों को प्रारम्भ से ही आंकड़ों वाली शिक्षा के बोझ तले दबा दिया जाता है जबकि उस बोझ को उठाने के लिए जब मानसिकता तैयार होती है तो उसे उन सभी चीजों से मुक्त कर दिया जाता है।

आज प्रचलित शिक्षा के नाम पर आदमी को केवल बौना बनाया जा रहा है। उसमें शब्दों का ज्ञान तो है, पर विद्या का बल नहीं, जीवन मूल्यों की सामर्थ्य नहीं। आज की शिक्षा पद्धति आदमी को रट्टू तोता बनाने का कुचक्र है। उसके भीतर जो सम्भावनाओं का गीत पल रहा है, उस गीत के सुकोमल पंखों पर बेरोजगार पैदा करने वाली डिग्रियों के पत्थर बाँधकर उसे पंखहीन करने की लुभावनी साजिश है। आज की शिक्षा पद्धति मानवीय कुंठा का बड़ा ही अजीबो गरीब चित्र बनकर रह गई है, जहाँ अपनी संस्कृति से बिछुड़ने का दर्द है, आस्था के संकट हैं, मूल्यहीनता की कालिख है। इस स्थिति से निपटना युग की सबसे बड़ी चुनौती है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था का जो स्वरूप वर्तमान में हमें साधनोन्मुखी दृष्टव्य होता है प्राचीनकाल में वह साध्योमुखी था। शिक्षा व्यवस्था से श्री राम शर्मा आचार्य जी का तात्पर्य जीवन की उस समाकलित प्रक्रिया से है, जो जीवन के साधनों का प्रयोग करते हुए जीवन के साध्य की प्राप्ति की दिशा में सहायता प्रदान करे। श्री राम शर्मा आचार्य जी के अनुसार ''शिक्षा एक आलौकिक चेतना है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में असाधारण उत्कृष्टता का विस्तार करती है। शिक्षा व्यवस्था को उदीयमान सूर्य भी कहा जा सकता है जिसके दर्शन मात्र से सर्वत्र चेतना का एक माहौल उमड़ पड़ता है तथा ऊर्जा व आभा का उद्‌गम होता है। सच तो यह है कि नर–वानर को शक्ति पुंज बनाने का श्रेय शिक्षा व्यवस्था को ही है।''

मनुष्य के सामाजिक जीवन में नैतिक आचरण, जीवन मूल्यों की स्थापना, राजनीतिक व्यवस्थाओं की स्वीकृति, आर्थिक समस्याओं का निराकरण आदि समस्याओं को सुलझाने का दायित्व शिक्षा व्यवस्था का ही माना गया है। प्रचलित शिक्षा प्रणाली की असफलता का मुख्य कारण उसमें सुसंस्कारिता का पाठ्यक्रम न जुड़े रहने का है।

वर्तमान शिक्षा पद्धति समस्याएँ सुलझाने और निपटाने का एक ऐसा वातावरण उत्पन्न करती है, जिससे उलझने और बढ़ती चली जाएँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देश की वर्तमान दशा से लगाया जा सकता है। स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में जाकर इसके प्रमाण देखे जा सकते हैं। जिन नवयुवकों के कन्धों पर राष्ट्र के भविष्य का भार है उन्हें रैंगिंग, हड़ताले, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, फैशन परस्ती, आलस्य, आचार दायित्व, अशिष्टता आदि न गिनाये जा सकने वाले रोगो से ग्रस्त करने की सबसे अधिक जिम्मेंदारी इस शिक्षा–पद्धति पर ही है।

प्रत्येक युग की शिक्षा–व्यवस्था अपने युग के समाज से जुड़ी हुई होती है, जिस शिक्षा व्यवस्था में यह विशेषता नहीं होती वह व्यवस्था कालान्तर में अपना महत्व खो देती है। आजकल हमारी शिक्षा व्यवस्था वास्तव में बहुत दोषयुक्त हो गई है। सबसे बड़ा दोष शिक्षा व्यवस्था में यह है कि यह विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण करने के बजाय उसका नाश कर देती है और नवयुवकों को जीवन के आरम्भ से ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का दास बना देती है। इसको मिटाकर हमें ऐसी शिक्षा–दीक्षा का विधान करना होगा जो हमें स्वयं अपने ऊपर विजय प्राप्त कर सकने में समर्थ बना सके।

वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था का मुख नौकरी की योग्यता पैदा करने की दिशा में एकदम मोड़ दिया जाये। यद्यपि आजकल की समूची शिक्षा व्यवस्था ही दोषपूर्ण है। आवश्यकता उसमें आमूल–चूल परिवर्तन करने की है। सरकारी स्तर पर इसके प्रयास भी चल रहे हैं। इसका शुभारम्भ अध्यापकों द्वारा अपना महत्व समझने तथा विद्यार्थियों के प्रति उत्तरदायित्व अनुभव करने से होना चाहिए। शिक्षा की नींव जब तक चरित्रवान व्यक्तियों के हाथों में नहीं पड़ेगी तब तक राष्ट्रीय जीवन के विकास की समस्या हल न हो सकेगी। राष्ट्र को ज्ञानवान, प्राणवान, शक्तिवान समुन्नत और सुविकसित बनाने के लिए वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन नितान्त अनिवार्य और आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पं0 श्री राम शर्मा आचार्य वाङमय 49, शिक्षा एवं विद्या
2. पं0 श्री राम शर्मा आचार्य एवं डॉ0 प्रणव पडंया, सार्थक एवं समग्र शिक्षा का स्वरूप पत्रिका
3. पं0 श्री राम शर्मा आचार्य, शिक्षण प्रक्रिया में संर्वागपूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता।
4. पं0 श्री राम शर्मा आचार्य, एक समानान्तर शिक्षा तन्त्र।